International Journal of Applied Research 2019; 5(7): 525-527

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(7): 525-527
www.allresearchjournal.com
Received: 13-05-2019
Accepted: 17-06-2019

डॉ. राकेश कुमार झा
S/o उपेन्द्र झा, पकटोला, राढ़ी, जाले, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. राकेश कुमार झा
S/o उपेन्द्र झा, पकटोला, राढ़ी, जाले, दरभंगा, बिहार, भारत

राष्ट्र निर्माण में लोकमान्य तिलक की भूमिका

डॉ. राकेश कुमार झा

सारांश
भारतीय राष्ट्र के एक महान निर्माता के रूप में तिलक ने विपुल कीर्तिरश्मि और अमर यश अर्जित किया है। तिलक उच्च कोटि के राजनीतिक नेता थे। वे 1896–97 में स्वराज्य की बात करते थे। उन्होंने 1907 में ही होमरूल का उल्लेख किया था। वे हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा मानते थे। कॉग्रेस प्रजातांत्रिक दल के घोषणा–पत्र में उन्होंने रेलवे के राष्ट्रीयकरण और राजनीति में धर्मनिरपेक्ष अभिविन्यास को स्वीकार किया। भारतीय श्रमिक आंदोलन के राजनीतिक और प्रचारात्मक महत्व को समझने में उन्होंने अनुपम बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता दिखाई। उन्होंने जनता को शक्तिशाली स्वतन्त्रता की भावना की शिक्षा दी। उन्होंने लोगों को अपने बल का अनुभव कराया। वे स्वतन्त्र राजनीतिक जीवन के लिए राष्ट्र की इच्छा के मूर्तिमान रूप थे।

प्रस्तावना
तिलक ने अपने सार्वजनिक जीवन का प्रारंभ एक शिक्षक के रूप में किया। वेद और हिंदू दर्शन की विभिन्न शाखाओं के प्रकांड विद्वान होने के बावजूद भी उन्होंने अनुभव किया कि भारतीय राजनीति के विकास में अंग्रेजी शिक्षा का योगदान हो सकता है और अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने प्रिय मित्र आगरकर और चिपलूणकर के साथ मिलकर जनवरी, 1880 में पूना नवीन आंग्ल विद्यालय की स्थापना की। नवीन आंग्ल विद्यालय एक नये दर्शन से प्रभावित था, जो उस समय की अन्य प्रमुख शिक्षण संस्थाओं के सिद्धांतों और व्यवहारों से भिन्न था। तिलक के दो प्रकार के आदर्श थे। उन्होंने चिपलूणकर और आगरकर के साथ यह आवश्यक समझा कि शिक्षा खर्चीला नहीं होनी चाहिए, और शिक्षकों को उस प्राचीन आदर्शवाद को पुनः ग्रहण करना चाहिए जो प्राचीन काल में हमारे देश में प्रचलित था। वेद और उपनिषद् काल के महान शिक्षक और गुरू द्रविण, रिक्थ, सम्पत्ति और वैभव के लिए नहीं बल्कि विद्वता, ब्रह्मवर्चस, ओज, चरित्रबल और कर्त्तव्यपरायणता के लिए प्रख्यात थे। मातृभूमि के पुनरूद्धार के लिए याज्ञवल्क्य, आङ्गिरस, पिप्पलाद आदि के उस प्राचीन आदर्श को पुनरू ग्रहण करना अनिवार्य था। तिलक का दूसरा उद्देश्य शिक्षा का प्रचार करना था। राजनीतिक प्रबोध और प्रगति के लिए शैक्षणिक अवसरों का प्रसार अनिवार्य था। इसलिए शिक्षा का तिलक के विचार से सर्वाधिक महत्वपूर्ण था।
शीघ्र ही पूना नवीन आंग्ल विद्यालय को बड़ी सफलता मिली। शिक्षा आयोग के सदस्य डा0 हंटर ने भी इसकी प्रशंसा की हैः "संपूर्ण भारत में मैंने ऐसी एक भी संस्था नहीं देखी जिसकी तुलना इससे की जा सके। यह संस्था देश के केवल सरकारी उच्च विद्यालयों के साथ नहीं बल्कि दूसरे देशों के विद्यालयों के साथ भी सफलतापूर्वक प्रतियोगिता कर सकती है।''
नवीन आंग्ल विद्यालय की सफलता से प्रेरित होकर तिलक ने शैक्षणिक कार्यों का विस्तार करना चाहा और इसी विस्तार के क्रम में उन्होंने महाराष्ट्र के बुद्धिजीवियों एवं प्रबुद्धजनों के साथ मिलकर डेक्कन एजूकेशन सोसाइटी की स्थापना की। इस सोसाइटी की स्थापना के लिए तिलक के महान प्रयास की प्रभूत प्रशंसा की जानी चाहिए। इस सोसाइटी का मुख्य कार्य अनेक शिक्षण संस्थाओं का व्यवस्था करना था। इस सोसाइटी के अंतर्गत ही पूना में फर्गुसन कॉलेज और सॉगली में विलिंग्डन कॉलेज की स्थापना की गई। लाला लाजपत राय ने डेक्कन ऐजूकेशन सोसाइटी के आदर्शों का प्रभाव उनलोगों पर स्वीकार किया है, जो डी0ए0वी0 कॉलेज, लाहौर की स्थापना और व्यवस्था में महत्वपूर्ण भाग ले रहे थे। वे कहते हैं कि लाहौर में डेक्कन एजूकेशन सोसाइटी से आजीवन सदस्यता की योजना ग्रहण की गई। परंतु डी0ए0वी0 कॉलेज में सरकार या सरकार से संबंधित किसी अन्य संस्था से अनुदान नहीं लिया जाता था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि डेक्कन एजूकेशन सोसाइटी की स्थापना के लिए उत्तरदायी ये सात व्यक्ति बाल गंगाधर तिलक, वी0एस0 आप्टे, जी0जी0 आगरकर, वी0पी0 केलकर, नामजोशी, गोले और धरप–केवल महाराष्ट्र के शिक्षा क्षेत्र में अग्रणी नहीं थे, बल्कि उनका आदर्श भारत के अन्य भागों में भी फैला।

शिक्षक और कॉलेज प्रोफेसर के रूप में बिताये गये अपने जीवन के दस वर्षों में तिलक ने गंभीर अध्ययन किया। फर्गुसन कॉलेज में वे गणित के स्थायी पद पर थे। गणित उनका प्रिय विषय था। एक बार तिलक ने यह इच्छा व्यक्त की थी कि जब भारत स्वराज्य प्राप्त कर लेगा तब वे अपना समय गणित में शोध और अध्ययन करने में बितायेंगे। कभी–कभी तिलक फर्गुसन कॉलेज में संस्कृत भी पढ़ाया करते थे। 1892 में 'ओरायन' जैसे ऐतिहासिक महत्व की प्रसिद्ध वैदिक पुस्तक लिखने में समर्थ हुए। यह इस बात का प्रमाण है कि तिलक ने गणित, ज्योतिष और वैदिक साहित्य के क्षेत्र में गहन अध्ययन किया था। फर्गुसन कॉलेज में तिलक ने पाँच वर्षों तक गणित पढ़ाया था। इसका उनके जीवन और लेखन की शैली पर स्थायी प्रभाव पड़ा। उनकी लेखनशैली तर्कयुक्त, यर्थाथ और सीधी थी। संस्कृत के अस्थायी शिक्षक के रूप में वे मेघदूत और भर्तृहरि–कृत नीतिशतक पढ़ाया करते थे। भर्तृहरि उनके प्रिय कवि थे, और केसरी में प्रकाशित उनके लोकप्रिय लेखों में भर्तृहरि के अनेक उद्धरण मिलते है। प्राध्यापक के रूप में तिलक का अध्यापन गंभीरता और परिपूर्णता से युक्त था। स्वामी रामतीर्थ के समान तिलक की भी यह ख्याति थी कि अपने छात्र–जीवन से ही वे गणित के ऐसे प्रश्न हल कर देते थे जो उनके अध्यापकों के लिए भी कठिन थे। तिलक का अविरत अध्यवसाय और गंभीर एकाग्रता बहुत महत्वपूर्ण थी, और उनके छात्रों पर उनके व्यक्तित्व का स्थायी प्रभाव पड़ता था। तिलक शोध के विद्यार्थी और विचारक के रूप में पूर्णतः योग्य थे। वे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के वैदिक विद्वान और दार्शनिक हो गये, परंतु अधिकांशतः उनकी शक्ति का उपयोग उनके जीवन के परम विराट उद्देश्य– 'भारतीय जनता की राजनीतिक मुक्ति की प्राप्ति'– के लिए होता था। किन्तु इसी बीच कुछ ऐसी घटनाएँ घटी जिनके डेक्कन एजूकेशन सोसाइटी और तिलक में गहरा मतभेद हो गया, और उन्होंने विद्वान सन्यासी के शांत और एकान्त जीवन को छोड़ संघर्षरत कर्मयोगी राजनीतिज्ञ का रूप धारण किया।

राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में तिलक की यह मान्यता थी कि स्वराज्य की प्राप्ति भारतीय राष्ट्रवाद के लिए बहुत बड़ी विजय होगी। इसलिए उन्होंने भारतीयों को यह मंत्र दिया कि "स्वराज्य भारतीयों का जन्मसिद्ध अधिकार है।'' यद्यपि अपने भाषणों एवं लेखों में लोकमान्य ने यही बतलाया कि स्वराज्य का अर्थ ब्रिटिश साम्राज्य से सर्वथा संबंध विच्छेद नहीं है, परंतु लोग यह समझते थे कि अपने हृदय में वे सदा पूर्ण स्वतंत्रता के पक्षपाती थे। एक बार उन्होंने कहा था कि स्वराज्य "आधार है और हमारी होनेवाली सम्पन्नता की ऊँचाई नहीं है।'' परंतु वे सदा यह कहते थे कि स्वराज्य प्राप्ति का मार्ग कष्टों से पूर्ण है। होमरूल के दिनों में लोकमान्य सावधनतापूर्वक यह कहते थे कि वे सम्राट के विरोधी नहीं है और केवल नौकरशाही में परिवर्तन चाहते है। वे विश्वासपूर्वक यह कहते थे कि नौकरशाही की निरंकुशता के विरूद्ध प्रचार करना राजद्रोह नहीं है।

लोकमान्य तिलक ने अधिकारपूर्ण राष्ट्रवाद की शक्तिशाली आधारशिला का निर्माण करके चिरख्याति अर्जित की। वे उग्रतावादी थे और इसके अनेक कारण थे। स्वभाव से वे क्रियाशील थे और अदम्य पौरूष की आक्रामक शक्तिशाली भावना का प्रतिनिधित्व करते थे। उत्तरध्रुवीय क्षेत्रों में विषुवत् रेखा तक अपनी प्रगति के मार्ग में आर्यों के द्वारा "अनार्य जातियों पर विनाश या आत्मीकरण के द्वारा विजय'' की प्रक्रिया पर उन्होंने विचार किया और उस आर्य जाति की शक्ति और श्रेष्ठता के चिह्न के रूप में मान्यता प्रदान की।

इस प्रकार हेगेल के समान तिलक ने अपने इतिहास–दर्शन में कुछ हद तक युद्ध और विजय को गौरवपूर्ण स्थान दिया। वे शिवाजी और अन्य मराठा वीरों के जीवन और विजय गाथा से प्रभावित हुए थे, जो संघर्ष, युद्ध और सफलतापूर्ण विजयों का प्रतिनिधित्व करते थे। उनका उग्रतावाद नौकरशाही के दमनात्मक तरीकों के कारण उनके बढ़ते हुए भ्रमनिवारण और क्षोमपूर्ण आक्रोश से भी प्रभावित था। यद्यपि वे उग्रतावादी थे परंतु वे आंदोलन के वैध तरीकों में विश्वास करते थे। वे बम्बई विधान परिषद् के दो बार सदस्य भी चुने गये थे। वे तीसरी बार भी निर्वाचन में भाग लेना चाहते थे। उन्होंने चुनाव लड़ने के लिए कॉग्रेस प्रजातांत्रिक दल स्थापना की। यद्यपि तिलक ने तत्कालीन कानून को स्वीकार किया था, परंतु वे देश में राष्ट्रवादी आंदोलन को तीव्र करने के लिए ब्रिटिश सरकार के कानून के द्वारा स्वतन्त्र छोड़े गये कार्यक्षेत्र का व्यवहार स्वतःप्रेरित ढंग से करना चाहते थे। राणाडे, फिरोजशाह मेहता और गोखले भारत में ब्रिटिश शासन को दैवी विधान थे। परंतु तिलक भारत के स्वतंत्र भाग्य पर विश्वास करते थे।

1896 ई0 के दुर्भिक्ष आंदोलनों में, 1905 से 1908 तक के आंदोलनों में और होमरूल के दिनों में तिलक के क्रियाकलापों का उद्देश्य संगठित कार्य के लिए जनता को प्रशिक्षित करना था। वे उस जनता में गतिशील कार्यवाद और अधिकारवाद की भावना का संचार करना चाहते थे, जो शक्तिहीन और निराश हो गयी थी। 1896 ई0 में उनके द्वारा कर–विरोधी आंदोलन का समर्थन, राष्ट्रीय शिक्षा पर उनका जोर देना, मदिरा विक्रय बंद करने के लिए धरना देने का समर्थन करना तथा स्वदेशी और बहिष्कार का दृढ़तापूर्ण समर्थन करना यह निश्चित रूप से बताता है कि लोकमान्य चाहते थे कि राष्ट्रीय आंदोलन का दृढ़ मूल भारतीय जनता के समन्वित और संयुक्त कार्य में होना चाहिए तभी वास्तविक अर्थों में श्भारत राष्ट्र निर्माण का स्वप्न संभव हो पाएगा।

नेता के रूप में तिलक के प्रसिद्ध होने के पहले भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पश्चिमी ढंग पर बौद्धिक विचार विमर्श के दर्शन को मानता था। उन्होंने राष्ट्रवादी आंदोलन के भारतीयकरण की शिक्षा दी। इसलिए राजनीतिक कार्य में उनका तरीका और राष्ट्रवादी आंदोलन का उनके द्वारा दार्शनिक समर्थन भारत की जनता के ऐतिहासिक उत्तराधिकार के प्रति अभिविन्यास था। यदि कुछ नरमदलीय नेता बौद्धिक प्रेरणा के लिए वर्क, मेजिनी और स्पेन्सर की ओर देखते थे तो तिलक शिवाजी, नाना फड़नवीस और भगवत्गीता की ओर। यह अंतर अरविंद और तिलक के विभिन्न सैद्धांतिक दृष्टिकोणों में पाया जाता है।

लोकमान्य तिलक को भारत की स्वतंत्रता के लिए उत्कट प्रेम और असीम व्यग्रता थी। परंतु राजनीतिक उपलब्धि के लिए कार्यक्रम के रूप में उन्होंने सदा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य की अवधारण को ही प्रस्तुत किया। तिलक स्वराज्य के लिए लड़ते थे, जबकि बंगाल के उग्र नेता स्वतंत्रता की मांग करते थे। तिलक ने राष्ट्रवाद की मनोवैज्ञानिक अवधारणा पर जोर दिया और कहा कि एक राष्ट्र में सभी लोगो को सम्मिलित करने के लिए समान अधिकार की भावना अनिवार्य है। परंतु अरविंद और पाल ने राष्ट्र की आध्यात्मिक और धार्मिक अवधारणा पर बल दिया। अरविंद शुद्ध और सात्विक धर्म के रूप में राष्ट्रवाद को मानते थे। तिलक ने कहा कि विदेशी नौकरशाही की बुराईयों से भारत को मुक्त करने के लिए स्वराज्य अनिवार्य है।

तिलक बहुत बड़े राजनीतिज्ञ थे। इसलिए वे स्वाराज्य या होमरूल या स्वाशासन की अवधारणा को ही अपना उद्देश्य मानते थे। स्वदेशी आंदोलन के दिनों में पाल और अरविंद स्वतंत्रता की बात करते थे किंतु कुछ समय उपरांत पाल भी तिलक से प्रभावित होकर साम्राज्यवादी संघ के पक्षपाती बन गये। अरविंद ने भारत के लिए विदेशी साम्राज्यवाद के अधिकार को चुनौती दी। परंतु तिलक सावधानी के साथ बोलते हुए कहा, "आदर्श के रूप में स्वतन्त्रता एकदम ठीक है, परंतु कानून की पकड़ में आये बिना आप उसके लिए काम नहीं कर सकते। इसके लिए काम करना सम्राट से युद्ध करना होगा।'' यद्यपि अपने भाषणों और लेखों में तिलक ने स्वतंत्रता शब्द का व्यवहार नहीं किया और सदा स्वराज्य शब्द से ही संतोष किया परंतु ब्रिटिश सरकार यह अच्छी

तरह समझती थी कि वे उसके सबसे बड़े राजनीतिक विरोधी है। सरकार यह जानती थी कि भारत में एक ऐसा व्यक्ति है जिसे कष्ट या सुविधा देकर उसके निश्चित मार्ग से नहीं हटाया जा सकता। तिलक आजीवन भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के सबसे बड़े विरोधी रहे।

चिरोल ने अपनी पुस्तक ''इण्डिया'' में लिखा है :– तिलक वैसा वातावरण उत्पन्न करने वाले प्रथम व्यक्ति थे जिसमें हत्यायें की जा सकी। गोखले के जीवन लेखक जॉन एस0 होलैंड लिखते हैं कि तिलक शारीरिक बल का सिद्धांत मानते थे। महाधिवक्ता बॅन्सन ने जिसने 1908 में तिलक के मुकदमें में अभियोजन पक्ष की ओर से काम किया था, कहा कि तिलक के लेखों में ''विद्रोह की छिपी हुई धमकी" है और सार रूप में तिलक ''स्वराज्य नही तो बम'' की शिक्षा दे रहे थे।

तिलक कभी भी निरपेक्ष हिंसा के पक्षपाती नहीं थे। शांतिवादियों और संत फ्रांसिस तथा टाल्सटाय के द्वारा स्वीकृत अहिंसा के निरपेक्ष स्वरूप को उन्होंने कभी नहीं स्वीकार किया। वे अफजल खाँ को मारने में शिवाजी के कार्य का समर्थन करते हैं। वे चापेकर की चतुरता और साहस तथा बंगाल के क्रांतिकारियों की देशभक्ति की प्रशंसा करते थे। आचारशास्त्र के दार्शनिक के रूप में वे अभिप्राय की शुद्धि पर बल देते थे। बाह्य कार्य नैतिकता की कसौटी नहीं हो सकता। इसलिए यदि कोई अर्जुन या शिवाजी या और कोई देशभक्त कोई हिंसक कार्य करता था तो तिलक ऐसे लोगों की निंदा नहीं करते थे। यद्यपि वे परोपकार के लिए की गई हिंसा का सैद्धांतिक रूप से समर्थन करते थे, परंतु लोकमान्य ने कभी राजनीतिक हत्या करने की शिक्षा नहीं दी और न तो उन्होंने कभी किसी को राजनीतिक साधन के रूप में हत्या करने की प्रेरणा ही दी। अपने लिए उन्होंने राजनीतिक संगठन और आंदोलन के कानूनी तरीके को ही स्वीकार किया। वे समझते थे कि देश की स्थिति क्रांतिकारी कार्यों के लिए उपयुक्त नहीं है। 1906 में वे नासिक गये थे और उन्होंने वहाँ के लोगों को हिंसक क्रांतिकारी कार्य नहीं करने के लिए कहा था। परंतु वे इन दारूण कार्यों से लोगों को बचने के लिए नैतिक आधार पर नहीं बल्कि कार्य–साधकता की दृष्टि से कहते थे। एक बार उन्होंने कहा– ''भिक्षा मांगने से खुले विद्रोह तक अपनी योग्यता के अनुसार कुछ भी चुन लो और वैसा ही करो। परंतु याद रखो "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मों भयावहः।''

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि बाल गंगाधर तिलक का दृष्टिकोण भारतीय संस्कृति के अनुरूप था और वे इसी पथ पर बढ़कर स्वतंत्र भारत की स्थापना चाहते थे। वस्तुतः लोकमान्य हिन्दू धर्म के शक्तिशाली सांस्कृतिक और धार्मिक पुनरूत्थान से भारत में राष्ट्रीय आंदोलन को पुष्ट करना चाहते थे। तत्वमीमांसीय विचारों में तिलक वेदान्ती थे। मनुष्य में दिव्य प्रेरणा के रूप में स्वतंत्रता और आंतरिक आत्मानुभूति के रूप में उनकी अवधारणाएँ उनके वेदान्ती विचारों को सूचित करती है। मानवीय भ्रातृत्व में उनका विश्वास भी वेदान्तवाद से ही उद्‌भूत हुआ। एक प्रकार से वे राष्ट्रवाद के आदर्श और मानव एकता की वेदान्ती अवधारणा के बीच समझौता चाहते थे। यह कहा जा सकता है कि बाल गंगाधर तिलक का दृष्टिकोण भारतीय संस्कृति के अनुरूप था और वे इसी पथ पर बढ़कर स्वतंत्र भारत की स्थापना चाहते थे। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि बाल गंगाधर तिलक का दृष्टिकोण भारतिय संस्कृति के अनुरूप था और वे इसी पथ पर बढ़कर स्वतंत्र भारत की स्थापना चाहते थे।

संदर्भ

1. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा–लोकमान्य तिलक एण्ड अर्ली इण्डियन नेशनलिज्म, पटना यूनिवर्सिटी जर्नन, 1961
2. टी.वी. पर्वते–बालगंगाधर तिलक, अहमदाबाद, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, 1958
3. एन.जी. जोग–लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, नयी दिल्ली, भारत सरकार, सूचना मन्त्रालय प्रकाशन विभाग, 1962
4. डी.कीर–लोकमान्य तिलक
5. रामनाथ सुमन–हमारे राष्ट्र निर्माता
6. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा–लोकमान्य तिलक, विश्व राजनीति, पटना, ज्ञानपीठ प्रेस, 1960
7. डी.वी. तहमरकर–लोकमान्य तिलकः फादर ऑफ इंडिया अनरेस्ट एण्ड मेकर ऑफ मार्डन इण्डिया, लंदन, जॉनमर्रे, 1956